ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-10* November- 2020
Innovation The Research Concept

आदिवासी समाज की समस्याएं एवं मानवाधिकार

Tribal Society Problems and Human Rights

Paper Submission: 15/11/2020, Date ofAcceptance: 26/11/2020, Date of Publication: 27/11/2020

मन्नू राम मीना
सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग,
श्री संत सुन्दरदास राजकीय
स्नातकोत्तर महिला
महाविद्यालय, दौसा,
राजस्थान, भारत

सारांश

आदिवासी शब्द किसी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए प्रयोग में लिया जाता है जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र से ज्ञात इतिहास में सबसे पुराना संबंध रहा हो। आदिवासी भारत के पुरातन लोग है तथा मूल वाशिंदे है। जनजाति शब्द भी इनका ही पर्याय है। आदिवासियों का जीवन सरल और सादा रहा है। ये लोग पाश्चात्य भोग–विलास, सुख–सुविधाओं से निरत कठिन परिस्थितियों में भी संयम और शांति से जीवन यापन करते हैं। आदिवासियों का स्वभाव अभाव में भी प्रसन्न चित्त रहने का है। तथा इनके खान–पान, वेशभूषा आदि में विशेष बदलाव नहीं आया है। आदिवासी प्राकृतिक धरातल पर जीवन यापन करते हैं। ये जातियां शीत प्रदेशों , घने जंगलों, उष्ण व शुष्क मरुस्थलों, घास के मैदानों एवं दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करती है। इनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति, सामाजिक ढांचा , परंपराएं , रीति –रिवाज मान्यताएं हैं। इन जनजातियों की अर्थव्यवस्था का आधार खाद्य संग्रहण, आखेट, घुमक्कड़ पशुचारण व आदिम ढंग की निर्वाहन कृषि है। आदिवासी मुक्त एवं आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत करते रहे हैं परंतु औपनिवेशिक कालीन नीतियों और बाह्य समाज के संपर्क ने इनके लिए कई तरह की समस्याओं को जन्म दिया यथा – शिक्षा की समस्या, धर्मान्तरण की समस्या, स्वास्थ्य की समस्या, भूमि हस्तांतरण की समस्या निर्धनता, महंगाई प्रमुख रही है। मानवाधिकारों के माध्यम से आदिवासियों की समस्याओं के समाधान का प्रयास किया गया है। आदिवासियों के मानव अधिकार से संबंधित प्रमुख मुद्दा है– जंगल के साथ उनका अन्योन्याश्रित संबंध तथा आदिवासियों की भूमि का अधिग्रहण करना। मानवाधिकार आदिबासियों रक्षा करते है तथा उनकी सुरक्षा एवं सम्मान पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान करता है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना के बाद आदिवासियों पर होने वाले अत्याचारों में कमी आई है क्योंकि यह उनके अधिकारो के विरूद्ध दुरुत्साहन और हनन की रोकथाम करता है तथा आए दिन होने वाले अत्याचारों से मुक्ति के लिए कठोर दंड की व्यवस्था करता है।

The term tribal is used for those residents of a geographical area who have had the oldest connection in history known to that geographical area. Adivasis are ancient people of India and the original inhabitants. The word tribe is also synonymous with them. The life of the tribals has been simple and simple. These people live in restraint and peace, even in difficult situations, under Western enjoyment, pleasure, amenities. The nature of tribals is to be happy in the absence of happiness. And there is no significant change in their food, costumes etc. Adivasis live on the natural surface. These castes inhabit cold regions, dense forests, warm and dry deserts, grasslands and inaccessible mountainous areas. They have their own distinct culture, social structure, traditions, customs and customs. The basis of the economy of these tribes is food collection, hunting, nomadic pastoral and subsistence farming in the primitive manner. Adivasis have lived a free and self-reliant life, but colonial policies and contact with external society have given rise to many problems for them - problems of education, problems of conversion, health problems, problems of land transfer, poverty, inflation. Has been prominent. Attempts have been made to address the problems of tribals through human rights. The main issue related to human rights of the tribals is their interdependent relationship with the forest and acquisition of the land of the tribals. Human rights tribals protect and provide the right to freedom to live a life full of security and respect. Atrocities on tribals have come down since the establishment of the National Human Rights Commission as it curbs abuses and abuses against their rights and provides for stringent punishment for freedom from the atrocities that occur on the day.

मुख्य शब्द : आदिवासी, मूलनिवासी, मानवाधिकार, मानवाधिकार कानून, भील जनजाति, मीणा जनजाति।

Tribal, indigenous, human rights, human rights law, Bhil tribe, Meena tribe.

प्रस्तावना

आदिवासी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है आदि और वासी जिसका अर्थ मूलनिवासी होता है अतः आदिवासी शब्द से सामान्य रूप से यह आशय लिया जाता है कि किसी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए किया जाता है जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र से ज्ञात इतिहास में सबसे पुराना संबंध रहा हो। परंतु संसार के विभिन्न भू–भागों में जहां अलग–अलग धाराओं में अलग–अलग क्षेत्रों से आकर लोग बसे हो उस विशिष्ट भाग के प्राचीनतम अथवा प्राचीन निवासियों के लिए भी इस शब्द का उपयोग किया जाता है। ये भारत के पुरातन लोग हैं। भारत के मूल बाशिंदे है, वे देश के मूल निवासी है जो हजारों वर्षों से इस धरती पर निवास कर रहे हैं। जनजाति शब्द भी इनका ही पर्याय है। बलवंत मेहता के अनुसार – "ये वनवासी वन के राजा थे। वनवासी अर्थात जनजाति वह समाज है जो राज्य के विकास के पूर्व अस्तित्व में था या जो अब भी राज्य के बाहर है। भारत में राजस्थान पुरातन काल से ही विभिन्न जातियों ,समुदायों, कला और संस्कृतियों से समृद्ध रहा है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों से तो सभी भली–भांति परिचित हैं परंतु शताब्दियों से जो विभिन्न जनजातियां यहां निवास कर रही है, उनके बारे में अधिकांश लोगों को बहुत कम जानकारी है।

यह समय का चक्र है कि किसी समय इनका वैभव भी अपनी पराकाष्ठा पर था। राजस्थान के राजपूतों के उदय से पहले सारे राजपूताना पर भील और मीणा जनजातियों का आधिपत्य था पर राजपूतों के उत्थान के साथ ही इन जनजातियों का वैभव क्षीण होने लगा, नतीजतन इनके गौरवपूर्ण इतिहास का बहुत कम अंश ही सुरक्षित रह पाया है जो शिलालेखों और ताम्रपत्रों पर यत्र–तत्र बिखरा पड़ा है।"[1]

अध्ययन के उद्देश्य

आदिवासियों की उत्पत्ति, क्षेत्र व आदिवासी शब्द का अर्थज्ञान कराते हुये उनके सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन का परिचय कराना । भारतीय सन्दर्भ में आदिवासियों का जीवन व उससे जुड़ी समस्याओं– निरक्षरता, गरीबी, निर्धनता, सुरक्षा, स्वास्थ्य, शोषण, विस्थापन, भूमि हस्तान्तरण आदि का विवेचन करते हुये इनके निराकरण में मानवाधिकारों के योगदान को बताना है। किस प्रकार इनके अधिकारों की रक्षार्थ मानवाधिकारों के तहत विभिन्न आयोगों की स्थापना की गई व इनका कार्य उत्तरोतर प्रगति की ओर बढ़ रहा है। परन्तु इन सब के बावजूद अभी भी आदिवासियों कों मुख्यधारा से जोड़ने के लिये प्रयास करने होंगें।

विषय विस्तार

प्राकृतिक सरल स्वभाव की भांति आदिवासियों का जीवन भी पाश्चात्य भोग –विलास, सुख–सुविधाओं से निरत कठिन परिस्थितियों में भी संयम और शांति से यापन किया जाता है। आदिवासी बच्चों के नग्न देह, रज–कण पूरित मुख, उलझे बाल और उनका इतने अभाव में भी खेल– खेल में उन्मुक्त रहकर स्वच्छंद मुस्काना किसी मृत देह में संजीवनी बूटी का कार्य करने की शक्ति संचित करता है। अधिकांश आदिवासी प्राकृतिक धरातल पर जीवन यापन करते हैं। उनका रहन–सहन, खान–पान ,वेशभूषा आदि में विशेष बदलाव नहीं आया है । इस प्रकार की जनजातियां शीत प्रदेशों, घने जंगलों ,उष्ण व शुष्क मरुस्थलों , घास के मैदानों एवं दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करती हैं। इनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति ,सामाजिक ढांचा, परंपराएँ, रीति–रिवाज व मान्यताएं हैं। इन जनजातियों की अर्थव्यवस्था का आधार खाद्य संग्रहण ,आखेट,घुमक्कड़, पशुचारण व आदिम ढंग की निर्वाहन कृषि है। आदिवासियों का श्रम विभाजन एवं संपत्ति भी अनूठे रहे हैं –आदिवासियों की व्यक्तिगत संपत्ति में धनुष–बाण, नावे, कृषि औजार अर्थात वह साधन जो किसी न किसी क्रिया में व्यक्ति स्वयं काम में लेता है, आते हैं। शेष कृषि भूमि, तालाब, चारागाह, नदी, शिकार क्षेत्र आदि पर सामूहिक स्वामित्व होता है। उत्पादन की इकाई व्यक्ति नहीं वरन् परिवार होता है।[2] .

आदिवासी मुख्यतः समस्या मुक्त एवं आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत करते रहे हैं ,परंतु औपनिवेशिक कालीन नीतियों और बाह्य समाज के संपर्क ने इनके लिए कई तरह की समस्याओं को जन्म दिया है। इन समस्याओं में प्रमुखतरू धर्मांतरण संबंधित समस्या , शिक्षा की समस्या, ऋणग्रहस्तता की समस्या, स्वास्थ्य, भूमि हस्तांतरण की समस्या प्रमुख है । आदिवासी समुदाय अपने परिवेश एवं भौगोलिक परिस्थितियों में पुरातन एवं सहज संस्कृति का जीवन जीता रहा है। गैर जनजातियों के संपर्क में आने के बाद जमीदारों, साहूकारों आदि द्वारा किए गए शोषण ने जहां एक और इन्हें आर्थिक विषमता में धकेला वही तंत्र–मंत्र के शरणागत होने के लिए भी बाध्य किया।

अशिक्षा भारतीय जनजातियों की प्रमुख समस्या रही है। भारतीय जनजातियाँ सदियों से शोषण का शिकार रही है जिसके लिए शिक्षा का अभाव एक प्रमुख उत्तरदायी कारक रहा है। जनगणना के आंकड़ों के अनुसार जनजातियों की कुल जनसंख्या का आज भी 70 प्रतिशत से अधिक भाग निरक्षर है। इस निरक्षरता के कारण उनमें अंधविश्वास, अत्यधिक गरीबी व सुविधाओं की कमी बनी रहती है। शिक्षा के प्रसार से ही जनजातियों के विकास को बढ़ाया जा सकता है। आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा की जिस तरह की उन्नत स्थिति होनी चाहिए वह नहीं है। शिक्षा के द्वारा ही आदिवासियों का समग्र विकास किया जा सकता है शिक्षा के द्वारा ही उन्हें अज्ञानता के अंधकार से मुक्त किया जा सकता है और उन्हें नवीन चेतना से अवगत कराया जा सकता है। अपने आसपास की तेजी से बदलती हुई सामाजिक ,राजनीतिक ,सांस्कृतिक आर्थिक घटनाओं की जानकारी और उनके प्रति जागरूकता लाई जा सकती है। देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में भी इसे रखा गया था। शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न वर्गों के बीच समानता को दूर करने की बात भी की गई थी।"[3]

निर्धनता आदिवासियों की एक ज्वलंत समस्या है। इस समस्या के कारण आदिवासी लोगों को जहां भी रह रहे हैं वहॉ पौष्टिक भोजन, वस्त्र व मकान उपलब्ध

नहीं हो पा रहा है जो व्यक्ति की प्रमुख आवश्यकता मानी जाती है। न्यूनतम शारीरिक आवश्यकताओं में जीवित ,सुरक्षित और स्वस्थ रहने की अनिवार्य आवश्यकताएँ आती है,जिनमें खाना और पोषण तथा घर और स्वास्थ्य सम्मिलित है। ग्रामीण आदिवासी व्यक्ति ये सभी आवश्यकताएं पूरी नहीं कर पाता है। निर्धनता एक अभिशाप है। यह अनेक बुराइयों को जन्म देता है। व्यक्ति के बौद्धिक व मानसिक स्तर पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ता है। पूरे भारत के लिए गरीबी एक अभिशाप है ,यहां गरीबी का स्तर यह है कि बहुत से लोगों को बमुश्किल एक वक्त का ही भोजन नसीब हो पाता है। यह हालात अनुसूचित जनजातियों के लिए और भी सोचनीय है। गरीबी हटाने के लिए देश में ''गरीबी हटाओ'' जैसे कार्यक्रम भी बने ,मगर उसका क्रियान्वयन ठीक से नहीं होने के कारण आज भी आदिवासियों में गरीबी की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है।आदिवासियों को और अधिक निर्धन करने में कहीं ना कहीं सरकार की नीतियों का भी हाथ रहा है। आदिवासियों से जंगलों के वन–उत्पाद संबंधी उनके परंपरागत अधिकार पूरी तरह से छीन लिए गए। जनजातियों की अच्छी उपजाऊ जमीनें बाहरी लोगों के हाथ में चली गई। सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी दर उन्हें मजदूरी करने के बाद भी प्राप्त नहीं हो पाती है,जिससे उनकी गरीबी कम होने की जगह बढ़ी ही है।

बड़े अफसोस के साथ कहा जा सकता है ,कि भारत के विकास के नाम पर आदिवासियों को अपनी भूमि और जंगलों से ही बेदखल नहीं किया अपितु नैतिक मापदंडों को ताक पर रखकर उन्हें अपनी भूमि से बेदखल कर दिया गया। विस्थापन की समस्या आदिवासियों की एक सबसे बड़ी समस्या के रूप में रही है। आधुनिकीकरण के नाम पर बांध परियोजना राष्ट्रीय उच्च मार्ग ,रेलवे लाइन खनन व्यवस्था, औद्योगिकरण, अभ्यारणकेंद्र एवं अन्य कारणों से आदिवासियों का अनिवार्य विस्थापन हुआ है। एक तरह से उन्हें अपनी पारंपरिक जमीन व परिवेश को छोड़ने के लिए विवश किया जाता है तो दूसरी तरफ जंगल और जमीन से भी आगे जाकर उनके जीवन को दांव पर लगाकर लगातार खेल खेला जा रहा है। आदिवासियों में आज विस्थापन का दंश इतना भयंकर है कि एक छोटे से गांव से निकली विस्थापन की समस्या से पीड़ित गरीब परिवार की महिलाएं भी पेट पालने के लिए मेहनत मजदूरी के लिए विवश है। जिनकी गरीबी ,विवशता व परिस्थितियां बड़ी दयनीय स्थिति में है। आदिवासियों की इस समस्या पर हमें निर्मला पुतुल की एक कविता "तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें, याद आती है। इस कविता के माध्यम से निर्मला पुतुल कहती है –

अगर हमारे विकास का मतलब
हमारी बस्तियों को उजाड़ कर कल –कारखाने बनाना है
तालाबों को सोखकर राजमार्ग ,
जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्स कॉलोनियां बनानी है
और पुनर्वास के नाम पर हमें
हमारे ही शहर की सीमा से बाहर हाशिए पर धकेलना है
तो तुम्हारे तथाकथित विकास की मुख्यधारा में
शामिल होने के लिए
सौ बार सोचना पड़ेगा हमें" [4]

जिनके कारण से उनका जीना कठिन ही नहीं मुश्किल होता जा रहा है।

आदिवासी शिक्षा के अभाव, निर्धनता और विस्थापन की समस्या से जूझता हुआ अपनी आर्थिक तंगी से परेशानी के कारण लालच में आकर अपनी जमीन को बेचने पर मजबूर हो रहे हैं –"आज के आदिवासी समूहों की समस्याएं शोषण का परिणाम है। आदिवासी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग ऐसा है जो कृषि से जीविकोपार्जन करता है और जिसका शोषण विभिन्न तरीकों से साहूकारों, जमीदारों और बिचोलिया द्वारा होता।"[5] भूमि हस्तांतरण के कारण आदिवासियों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। जब से ये जनजातियां मुख्यधारा और इनकी वित्त संस्थाओं के संपर्क में आयी ,धन की कमी के कारण उनकी भूमि का हस्तांतरण बढ़ता गया। सीमित संसाधनों में रहने वाले आदिवासियों को आज विवाह, उत्सवों, कपड़ों, मदिरा तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए सदैव धन की आवश्यकता रहने लगी है। साथ ही कृषि भूमि भी कम उपज वाली होने के कारण इन्हें खाने की सामग्री भी बाजार से खरीदनी पड़ती है। पैसों के अभाव में ये साहूकारों और दुकानदारों से ऋण लेते हैं और बाद में वही कर्ज चुकता नहीं कर पाने के कारण उन्हें अपनी भूमि से हाथ धोना पड़ता है, यही वजह है कि भूमि हस्तांतरण का एक मुख्य कारण ऋण है।

हांलांकि भारतीय संविधान में सेठ –साहूकारों, भू –स्वामियों एवं छुट– भैया व्यापारियों द्वारा सामान्य आदिवासियों को शोषण एवं बेगार से मुक्ति दिलाकर जनजातियों के संरक्षण एवं विकास की बात कही गयी है। बावजूद इसके आज भी यह समस्या ज्यों की त्यों विद्यमान है। इसी प्रकार वन से संबंधित सरकारी नीति एवं अफसरशाही के व्यवहार ने भी जनजातियों के समूह के लिए कई समस्याएं पैदा कर दी है। क्योंकि जनजाति समूहों का बहुत बड़ा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अपने जीविकोपार्जन के लिए वन उत्पाद से जुड़ा है।"[6]

मदिरापान आदिवासियों का प्रमुख शौक रहा है जो इस समाज की प्रचलित बुराइयों में एक प्रमुख बुराई मानी जा सकती है। आदिवासी समाज में मदिरा का निर्माण स्वयं आदिवासी लोग ही करते है। मदिरा बनाने के लिए यह बाजरे ,चावल व महूए के फल का इस्तेमाल करते हैं। मदिरा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा बाहरी असामाजिक तत्व इस पिछड़े समुदाय के बीच पहुंचकर आपत्तिजनक कार्य करते हैं, साथ ही इसकी लत में आदिवासी अपने को आर्थिक रूप से और भी कमजोर करते हैं।

तस्करी की समस्या आदिवासियों की प्रमुख समस्या मानी जाती है जो केवल भारत की ही नहीं बल्कि पूरे एशिया की प्रमुख समस्या है। आदिवासी महिलाओं को महज पचास हजार रूपये से एक लाख रुपयों में बेच दिया जाता है। इस वजह से लिंगानुपात में भी ट्रैफिकिंग एक खास वजह है। तस्करी की समस्या के कारण इनका शोषण अति चरम अवस्था तक पहुंच चुका है। जागरूकता

की कमी व धन के अभाव में आदिवासीजन को इस (ट्रैफिकिंग) अमिट कलंक को भी सहन करने की भयावह स्थिति से गुजरने के लिए विवश होना पड़ रहा है तथा इससे आदिवासी जीवन नारकीय हो चुका है।

बढ़ती हुई महंगाई की समस्या वर्तमान में सभी जातियों के लिए प्रमुख समस्या बनी हुई है तो भला आदिवासी समाज इससे कैसे अछूता रह सकता है। यह समस्या आदिवासी किसान की बहुत गंभीर समस्या है। महंगाई की समस्या प्राकृतिक समस्या न होते हुए भी वर्तमान में अपने पांव चारों ओर फैला चुकी है। जब सभी चीजों का उत्पादन हमारे देश में हो रहा है फिर भी महंगाई निरंतर क्यों बढ़ती जा रही है ? इसके पीछे कहीं सवाल हमारे मनों –मस्तिष्क में उठते हैं कि वे कौन सी ताकत है जो इस देश को खोखला कर रही हैं ? कौन इसे बढ़ावा दे रहे हैं ? इसके बारे में विचार करना अति महत्वपूर्ण हो गया है।

"राजस्थान, बिहार ,उड़ीसा आदि की कुछ जनजातियों की कृषि भूमि सूदखोर ,महाजनों के हाथों में पहुंच चुकी है। बीच में सरकारी प्रयत्न से थोड़ी बहुत स्थानीय गैर –जनजाति प्रभुत्व व्यक्तियों से भूमि सामान्य जन को पुनरू दिला दी गई थी लेकिन अब जनजाति के प्रमुख व्यक्तियों के पास आती जा रही है लेकिन फिर भी जनजातीय लोगों की अधिकांश आर्थिक समस्या सूदखोर ,महाजन एवं प्रभुत्वशाली जातियां हैं जिनमें वैश्यों के साथ क्षत्रिय एवं ब्राह्मण दोनों सम्मिलित हैं कि देन तो है ही ,सरकार की स्वयं की नीतियां भी उतनी ही जिम्मेदार हैं। स्थानान्तरित कृषि पर रोक लगाकर अन्य समुचित व्यवस्था न करना ,वनों से लकड़ी या संबंधित चीजों के दोहन पर रोक लगाना आदि भी आर्थिक समस्याओं की उत्पत्ति के बड़े कारण हैं। उनका आर्थिक शोषण , दैनिक जीवन –यापन के हर स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति कर रहा है। ऋणग्रस्तता की समस्या गैर आदिवासियो की देन है।"[7]

स्वास्थ्य भी आदिवासियों की एक समस्या है। आमतौर पर उनका स्वास्थ्य बढ़िया होता है पर कम पढ़े–लिखे होने के कारण और जागरूकता की कमी के कारण प्रायरू आदिवासी अपने स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान नहीं दे पाते हैं। साथ ही दूरदराज के क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी के कारण उनको काफी असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। कभी–कभी तो हालात काफी मुश्किल हो जाते हैं और तब अस्पताल के अभाव में इनके जीवन–मृत्यु तक बात पहुँच जाती है। सरकार स्वास्थ्य तथा चिकित्सा की दिशा में अधिक से अधिक सुविधाएं प्रदान करने की इच्छुक है किंतु यह भी सच्चाई है कि आज तक आदिवासियों से जुड़ी इस समस्या के बारे में कोई ठोस सराहनीय कदम नही उठा है जिससे कहा जा सके कि आज आदिवासी समाज स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वस्थ्य हो गया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारत में जनजातीय समुदाय जंगलों एवं पहाड़ों के निवासी रहे हैं। ये मुख्यतः समस्या मुक्त एवं आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत करते रहे हैं , परंतु कालांतर में औपनिवेशिक कालीन नीतियों और बाह्य समाज के संपर्क ने इनके लिए कई तरह की समस्याओं को जन्म दिया है। इन समस्याओं में धर्मांतरण संबंधित समस्या, अशिक्षा, ऋणग्रस्तता स्वास्थ्य ,भूमि हस्तांतरण की समस्या जो वर्तमान के औद्योगिक दौर में एक जटिल समस्या बनी हुई है। आदिवासी समुदाय अपने परिवेश एवं भौगोलिक परिस्थितियों में पुरातन एवं संस्कृति का जीवन जीता रहा है। गैर जनजातियों के संपर्क में आने के बाद जमीदारों ,साहूकारों आदि द्वारा किए गए शोषण ने जहां एक ओर ने इन्हें आर्थिक विषमता में धकेला वही तंत्र–मंत्र के शरणागत होने के लिए भी बाध्य किया। अशिक्षा भारती जनजातियों की प्रमुख समस्या रही है। भारतीय जनजातियां सदियों से शोषण का शिकार रही है जिसके लिए शिक्षा का अभाव एक प्रमुख उत्तरदायी कारक रहा है। शिक्षा के अभाव में इन जनजातियों में कार्यकुशलता में कमी पायी जाती है। इस कारण वे न तो स्वयं का विकास कर पा रहे हैं और न ही भारतीय अर्थव्यवस्था में अपना योगदान दे पा रहे हैं आधुनिकीकरण जनित विकास में सहभागिता नहीं हो पाते हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात विकास प्रकिया का केंद्र बिंदु भारी उद्योगों एवं कोर सेक्टर का विकास रहा है। इसके परिणामतरू विशाल इस्पात संयंत्र ,शक्ति परियोजनाएं एवं बड़े बांध अस्तित्व में आये, जिन्हें अधिकतर जनजातिय रिहाइशी वाले क्षेत्रों में स्थापित किया गया। इन क्षेत्रों में खनन संबंधी गतिविधियां भी तीव्र होती गयी। इन परियोजनाओं हेतु सरकार द्वारा जनजाति क्षेत्रों की भूमिका का विशाल पैमाने पर अधिग्रहण किया गया, जिससे जनजातीय लोगों के विस्थापन की समस्याएँ पैदा हुई।जनजातीय नियंत्रण का स्थान सरकारी नियंत्रण ने ले लिया। इस प्रकार जनजातियों की कभी न खत्म होने वाली समस्या का दौर शुरू हुआ। स्वतंत्रता के बाद विकास समस्या के साधनों के रूप में भूमि एवं वनों पर दबाव बढ़ता गया। इसका परिणाम भूमि पर से स्वामित्व अधिकारों के संपत्ति के रूप में सामने आया। इसने बेमियादी ऋणग्रस्तता, भूस्वामी, महाजन, ठेकेदार तथा अधिकारियों जैसे शोषणकर्ता वर्गो को जन्म दिया।

प्रश्न उठता है कि आदिवासी समाज की समस्याओं के समाधान में मानव अधिकारों का योगदान कितना रहा है? सबसे पहले हमें मानवाधिकारों को समझना आवश्यक है। मानव अधिकार होते क्या है? वे अधिकार जो इंसान को इंसान होने का एहसास दिलाते हैं जिनका मिलना इस बात का घोतक है कि हां इंसानियत का कोई वजूद है। यह अधिकार है जो प्रत्येक मनुष्य को जन्म से मिले हैं यह मनुष्य की प्रकृति नहीं नियत है और किसी रीति रिवाज परंपरा रूढ़िवादिता कानून राज्य शासक ने किसी अन्य संस्था की देन नहीं है मानव अधिकार पहले हैं तो राज्य का या कानून जैसी चीजें बाद में है।यह बात अलग है कि समय के गुजरने के साथ–साथ राज्य या कानून इन्हे प्रवर्तित कराने वाले माध्यम के रूप में उभरे है।"[8]

मानव मानवाधिकारों के संबंध में दार्शनिक ग्रीन ने कहा कि 'मानव चेतना अपने विकास के लिए स्वतंत्रता चाहती है स्वतंत्रता अधिकारों में नीहित है और अधिकार

राज्य की मांग करते हैं। अर्थात राज्य का अस्तित्व ही नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए है। इसलिए मानव अधिकार जीवन की वे परिस्थितियां होती हैं जिनके बिना साधारणतया कोई व्यक्ति अपने सर्वोच्च स्वरूप की प्राप्ति नहीं कर सकता।"[9] किसी भी इंसान की जिंदगी, आजादी, बराबरी और सम्मान का अधिकार है –मानवाधिकार।

मानवाधिकारों का इतिहास की दृष्टि से काफी पुराना संबंध रहा है। विश्व मानवाधिकार की पृष्ठभूमि में दोनों विश्व युद्ध एवं रूस तथा फ्रांस की राज्यक्रांति का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। ये दोनों घटनाएं वर्तमान मानवाधिकारों के निर्माण में सहायक सिद्ध हुई। फ्रांस के संविधान में 28 सितंबर 1946 को मानवाधिकारों को शामिल किया। अमेरिका ने बिल ऑफ राइट्स नाम से 15 दिसंबर 1791 में मानवाधिकार कानून बनाया। कनाडा में 1960 में कनेडियन बिल आफ राइट्स बना। तत्पश्चात चीन, जर्मनी तथा विश्व के लगभग सभी देशों में मानवाधिकार कानून का मसौदा तैयार हुआ तथा लागू किया गया। 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में पारित होने के बाद तो विश्व के सभी देशों के संविधान में स्थान मिला।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो मानवाधिकार का संबंध प्राचीन काल से रहा है। वैदिक साहित्य में सामाजिक समरसता का समर्थन किया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि छोटे बड़े ऊंच–नीच का भेदभाव मिटाकर समरसता की भावना से रहना चाहिए। समाज में जब सभी भाईचारे की भावना से रहेंगे तभी समाज की उन्नति होगी। इसके साथ ही वैदिक साहित्य में स्त्रियों के अधिकारों की भी बात कही गई है। उन्हें कुल पालक माना गया है कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि "प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है। प्रजा के हित में ही उसका हित है।"[10]

भारत के वैदिक साहित्य में सर्वे भवंतु सुखिन के आदर्श को अपनाते हुए सभी के लिए जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को स्वीकार किया गया है अर्थात कहा गया है कि सभी के लिए रोटी ,कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत सुविधाएं समान रूप से उपलब्ध होनी चाहिए। मनु ने नागरिक व कानूनी अधिकारों को स्वीकार किया है। वहीं कौटिल्य ने उक्त अधिकारों में आर्थिक अधिकार भी शामिल किया है प्राचीन काल में सभी मानव को समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। भारत में वर्ण व्यवस्था का विकृत रूप प्रचलित था। जिसमें जाति का आधार कर्म न होकर जन्म था। कुछ जाती उच्च और कुछ निम्न समझी जाती थी। मानव के द्वारा मानव का शोषण किया जाता था इस शोषण को समाप्त करने हेतु प्राचीन काल में महात्मा बुद्ध ने जातिगत भेदभाव के प्रति आवाज उठाई और मानव मानव के बीच समानता का संदेश दिया। उसके बाद अशोक महान ने भी मानव की समानता में विश्वास करते हुए "जियो और जीने दो "का पाठ पढ़ाया।"[10] अतः कहा जा सकता है कि वेद, पुराण ,उपनिषद ,गीता ,महाभारत, रामायण आदि धार्मिक संहिंताओं में मानव समस्याओं का संपूर्ण निदान मिलता है। ये ग्रंथ जीवन उत्सव के ग्रन्थ है।"[11]

मध्यकाल भारतीय इतिहास में अंधकारकाल के नाम से भी जाना जा सकता है क्योंकि इस समय समस्त परंपराएं मर्यादाऐ ,नियम आदि का उल्लंघन किया गया। इस काल में अलाउद्दीन खिलजी जैसे अहंकारी और क्रूर सुल्तान पैदा हुए जिन्होंने कुरान से ऊपर स्वयं के वचनों को माना। विधि वह नहीं हैं, जो कुरान कहता है अपितु विधि वह है ,जो मैं कहता हूं। समता के सिद्धांतों को अधिक महत्व नहीं दिया गया।[12]

मध्यकाल से निकलकर आधुनिक काल के ब्रिटिशकालीन सत्ता व्यवस्था पर अंग्रेजों ने जमकर मानवाधिकारों का उल्लंघन किया। विश्व में लोकतांत्रिक मूल्यों को कायम करने के नाम पर सत्ताओ का जबरन हस्तगन करना और प्रजा के साथ क्रूर एवं अमानवीय व्यवहार करना अंग्रेजों की फितरत थी। 1857 क्रांति को पाश्विक तरीके से कुचला एवं अमानवीय को कर्तव्य अन्य किसी भी सभ्य समाज के मुंह पर कालिख से कम नहीं। यह काल मानवाधिकारों के मामले में शून्यकाल रहा है। 1857 की क्रांति के पश्चात कुछ प्रयास हुए जो स्वाधीनता तक चले पर वास्तविक अर्थों में आजादी के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी सार्वभौमिक घोषणा के बाद तेजी से आई और आज भारत विश्वव्यवस्था के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रहा है।"[13]

मैदानी भाग में रहने वाले लोगों या आधुनिक लोगों से अलग– थलग रहना आदिवासियों के जीवन का एक अनूठा पहलू है। अपने इसी स्वभाव के कारण वे अपने जातीय– सांस्कृतिक गुण को कायम रख सके। प्राकृतिक वातावरण विशेषता जंगल से इनका सम्बन्ध अत्यन्त प्रगाढ़ रहा है। जैस ही भारत में उपनिवेशवाद की स्थापना होने लगी सबसे पहले कुठाराघात के शिकार आकवासी ही हुये। उनको राजनीतिक, आर्थिक और प्रशासनिक रूप से मुख्य समाज से जोड़ने की प्रक्रिया का जो स्वार्थयुक्त प्रयास प्रारम्भ हुआ। इसने न केवल उनकी शान्त और स्वच्छन्द जीवनशैली को बाधित किया बल्कि आधुनिक समाज में गरीबी, बेरोजगारी आदि को भी जन्म दिया तथा जनजातियों के जीवन में शोषण का कारण बना। ये समस्याएं आदिवासियों के पारंपरिक जीवन शैली में क्षय और जनजातिय समुदायों के मानवाधिकार हनन का कारण बनी।

आदिवासियों के मानवाधिकार से संबंधित प्रमुख मुद्दा है जंगल के साथ उनका अन्योन्याश्रय संबंध। पारंपरिक रूप से जंगल और वन–भूमि ही जनजातीय लोगों का आश्रय था और जीविकोपार्जन का माध्यम भी। धीरे–धीरे प्राकृतिक संसाधन के नाम पर जंगल का रखरखाव सरकार ने अपने हाथों में ले लिया और आदिवासी तथा सरकार के बीच लगातार एक तनाव का माहौल बनता गया। सरकार ने इस बात की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया कि जंगल आदिवासियों की सामाजिक प्रथाओं और रीति –रिवाज का केंद्र बिन्दु रहा है।

आदिवासियों की भूमि का अधिग्रहण करना मानवाधिकार से संबंधित दूसरा मुद्दा रहा है। संचार और

विकास हेतु सरकार एवं अन्य संस्थाओं द्वारा आदिवासी भूमि का अधिग्रहण तथा भूमि कानून में त्रुटि की वजह से आदिवासी भूमि का विभाजन हो गया और ये अपनी संपदा को बैठे। भूमि आधिपत्य की यह नई प्रणाली आदिवासियों के सामाजिक– आर्थिक ढांचे को जड़ से बदल दिया और गैर जनजातीय लोगों का जनजाति क्षेत्रों में अतिक्रमण होने लगा।

गरीबी ,ऋणग्रस्ता और बेरोजगारी आदिवासियों के मानवाधिकार से संबंधित प्रमुख मुद्दे है।वन क्षेत्र पर अपना अधिकार खोने के बाद आदिवासियों की जीविका छिन गई और वो गरीबी की ओर धकेल दिए गए। अकाल के समय या विपरीत परिस्थितियों वे प्रायरू इन्हें पैसे की आवश्यकता होती और वैसी स्थिति में यह धोखेबाज महाजनों से कर्ज लेने को विवश हो जाते। आदिवासी पहले अपनी जमीन से भोजन के लिए खेती करते थे लेकिन अब उसी जमीन में पैसे के लिए फसल उगाने लगे। इससे उनकी पूरी अर्थव्यवस्था ही चरमरा गई और खाद्य पदार्थों के लिए उन्हें बाजार पर अधिक– से –अधिक आश्रित होना पड़ा। औद्योगिकरण से भी इन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। हालांकि नए –नए कार्य का मौका तो उत्पन्न हुआ लेकिन उचित शिक्षा और हुनर के अभाव में यह मौका उनके लिए किसी काम का नहीं था। आदिवासियों की मानवाधिकार सुरक्षा के रास्ते में आई बाधाओं को ध्यान में रखते हुए सरकारी और गैर– सरकारी संस्थाओं को चाहिए कि वे ना केवल उनके पारंपरिक अधिकार वापस दिलाए बल्कि इस तरह से उनका आधुनिकीकरण भी करे कि ये आदिवासी अपने मूल से अलग होने को विवश न हो।

मानवाधिकार कमजोर ,उपेक्षित वर्ग जैसे अल्पसंख्यक, महिलाओं, अनुसूचितजाति, जनजाति ,बालको ,पिछड़े वर्गों की सुरक्षा तथा उन्हें सम्मान पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। बालकों, महिलाओं के कल्याण ,सुरक्षा ,समानता प्रदान करवाने में झनकी महत्वपूर्ण भूमिका है बच्चों को निरूशुल्क अनिवार्य शिक्षा अत्याचारों से मुक्ति, बालश्रमशोषण से मुक्ति, चिकित्सा एवं मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति में तथा उपेक्षित वर्ग को सामाजिक ,आर्थिक, धार्मिक व न्यायिक समानता दिलाने की दिशा में मानवाधिकारों का महत्वपूर्ण योगदान है। मानवाधिकार व्यक्ति को किसी धर्म जाति को अपनाकर उसके अनुसार जीवन जीने की स्वतंत्र प्रदान करते हैं। विश्व के किसी भी धर्म के अनुसार पूजा करने, यज्ञादि कर्म करने, उत्सव आदि आयोजित करने ,प्रवचन आदि कर्म करने की इच्छा की स्वतंत्र देते हैं।"[14]

भारत में आदिवासियों को अनुसूचित जनजातियों की श्रेणी में रखा गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में अनुसूचित जनजाति की कुल जनसंख्या 84326240 है ,जो कि कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आदिवासी समाज अपनी विविध संस्कृतियों और कलाओं के साथ विशिष्ट पहचान बनाए हुए है,किंतु आज भी आदिवासी समाज उपनिवेशवादी एवं शोषणकारी जिंदगी जीने पर मजबूर है। विकास और औद्योगीकरण के नाम पर भारत सरकार ने आदिवासियों को जंगल ,जमीन से बेदखल किया है सच तो यह है कि विकास की सबसे बड़ी कीमत आदिवासी समाज को चुकानी पड़ी है ,जिन्हें अपनी ही जमीन से विस्थापित किया गया है। जिस वनभूमि पर उनका आवास और आर्थिक आधार है, उसे खत्म किया जाता है।

स्वतंत्रता के उपरांत औद्योगिकरण के लिए जो नेहरू मॉडल स्वीकार किया गया उससे जंगलों का अधिक मात्रा में दोहन होने के दुष्परिणाम स्वरूप आदिवासी जीवन पर नकारात्मक रूप से प्रभाव पड़ा। जंगल और संसाधनों पर निर्भर आदिवासी समाज निर्धन ,बेरोजगार व अपनी ही भूमि से बेदखल होता चला गया। सरकार ने आदिवासियों के लिए अनेक योजनाएं बनाई , पंचवर्षीय योजनाओं में प्रावधान भी किये परंतु गंभीरता की कमी के कारण आदिवासियों की दुर्दशा बढ़ती ही गई।

अंततः 1970 के दशक में आदिवासियों के अधिकारों के प्रति चिंतन उभर कर सामने आया। स्थानीय स्तर पर जनसंगठनों के प्रभावी प्रयासों के फलस्वरूप आदिवासी संगठित होने लगे तथा अपनी समस्याओं और मुद्दों को उठाने लगे। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 1982 में संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार आयोग ने देशज जनसंख्या पर कार्यकारी समूह का गठन किया। इस समूह में देशज लोगों के अधिकार संबंधित एक घोषणापत्र तैयार किया। 1989 में अंतरराष्ट्रीय मजदूर संगठन में मूल निवासियों की अपनी पहचान को मान्यता देने पर ज्यादा जोर दिया। देशज लोगों के बारे में तीन बिंदुओं की प्रमुखता दी गईः–

1. देशज लोग वे है जो किसी खास देश या भौगोलिक क्षेत्र का औपनिवेशिकरण होने से पहले वहां रहते थे।
2. क्षेत्र के बाहर से आए लोगों के द्वारा औपनिवेशिकरण के बाद वे हाशिए पर धकेल दिए गए।
3. ये लोग अपनी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जिंदगी व्यापक समाज की संस्थाओं के माध्यम से न चलाकर अपनी संस्थाओं द्वारा संचालित करते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में देशज लोगों के निम्न अधिकारों को मान्यता दी हैः–

1. वे अपने को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त कर सकें।
2. उनकी पदीय हैसियत हो और वे अपने प्रतिनिधि संगठन बना सके।
3. वे जिस क्षेत्र में बसते हो ,वहां अपने पारंपरिक आर्थिक ढांचे तथा जीवन पद्धति को बनाए रखें। किंतु यह अधिकार उनके देश के आर्थिक ,सामाजिक और राजनीतिक विकास मे उनकी भागीदारी को प्रभावित न करें।
4. वे प्रशासन और शिक्षा के लिए, जहां संभव हो ,अपनी भाषा के प्रयोग को बनाए रख सके।
5. वे अपनी आस्था और धर्म की स्वतंत्रता का उपभोग कर सकें।
6. भूमि और प्राकृतिक संसाधनों तक उनकी पहुंच रहे विशेषकर भूमि और प्राकृतिक संसाधनों पर उनके अधिकार, उनकी परंपराओं और आकांक्षा से जुड़े हुए हैं।
7. अपनी शैक्षणिक व्यवस्था का निर्माण , संचालन और नियन्त्रण कर सकें।

विश्व स्तर पर व भारत में आदिवासियों से संबंधित अनेक सुधार, विभिन्न योजनाएं और कानून बनाए गए परंतु इनके सबके बावजूद भी मानव अधिकार सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती है। इसके लिए पश्चिमी बंगाल ,उड़ीसा ,झारखंड ,आंध्रप्रदेश , महाराष्ट्र के आदिवासी इलाकों में भूमि अधिग्रहण के लिए सरकार द्वारा बनाए गए कानून का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। बहुराष्ट्रीय कंपनियां , खनिज संपदा की बहुलता के कारण,आदिवासी क्षेत्रों में है। वहाँ उन्हें मूलनिवासियों के लिए स्वास्थ्य ,शिक्षा ,आवास ,रोजगार की व्यवस्था करनी चाहिए। वर्तमान में जितने भी आदिवासियों के हितों के संरक्षण संबंधी कानून है , उन्हें प्रभावी रूप से लागू किया जाना चाहिए।

वर्तमान में राजनीति का स्वरूप बदल रहा है तो ऐसी स्थिति में आदिवासी समाज की भागीदारी को पूर्ण रूप से सुनिश्चित करने के कदम उठाने चाहिए। राजनीति की निर्णय प्रक्रिया में उनकी भूमिका ,उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सशक्त करेगी। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बने विभिन्न प्रावधानों और आदिवासी हितों की रक्षा की बात की जानी चाहिए और कदम उठाने चाहिए।

मानवाधिकार के अंतर्गत ही मूल अधिकार का समावेश किया जा सकता है। भारतीय संविधान ने प्रारंभ में सात मूल अधिकार प्रदान किए थे परंतु 44 से संवैधानिक संशोधन में संपत्ति के अधिकार को समाप्त कर दिया। भारतीय नागरिकों को आज जो छरू मूल अधिकार हैं वे इस प्रकार से है–समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार ,धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार ,संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार, संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

1993 में राष्ट्रपति द्वारा संविधान के अनुच्छेद 123 के अंतर्गत मानवाधिकार संरक्षण अध्यादेश जारी किया गया और ततपश्चात इसी अधिनियम को मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 का वर्तमान स्वरूप प्रदान किया और लागू कर दिया गया। यह अधिनियम 1994 का दसवां अधिनियम है जिसे राष्ट्रपति की अनुमति 8 जनवरी 1994 को प्राप्त हुई।

मानवाधिकार आयोग को अधिकारों के विरूद्ध दुरुत्साहन और हनन की रोकथाम में सरकारी कर्मचारियों की उपेक्षा की सभी शिकायतों पर विचार करने का अधिकार होगा। राष्ट्रीय मानवाधिकार की तरह ही 1989 में दलित वर्गों के उत्थान के लिए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम पारित किया गया। दलित वर्गों को इससे आए दिन होने वाले अत्याचारों से मुक्ति के लिए कठोर दंड की व्यवस्था की गई हालांकि प्रारंभ में इसकी संवैधानिकता को चुनौती दी गई परन्तु राजस्थान उच्च न्यायालय ने इस चुनौती को खारिज करते हुए इसे संवैधानिक करार दिया। इसी विषय पर न्यायालय ने स्टेट ऑफ मध्य प्रदेश बनाम रामकिशन बालोठिया के वाद पर कहा कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा (1) में जिन अपराधों का उल्लेख किया गया है। उनका निवारण समाज के इस कमजोर एवं दलित वर्गों के लोगों के लिए आत्मसम्मान के साथ जीने का मार्ग प्रशस्त करता है।

अनुच्छेद 332, 337 व 338 राज्य विधानसभा में अनुसूचित जनजाति व अनुसूचितजाति के स्थानों के आरक्षण, राजकीय सेवाओं और प्रमुख पदों पर नियुक्ति के दावे, प्रशासन की दक्षता को बनाए रखने की संगति के आधार पर ध्यान रखने का प्रावधान है।अनुसूचित जाति व जनजाति के विकास व उनके अधिकारों की रक्षार्थ विशेष अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान रखा गया है। इस अधिकारी की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। यह अधिकारी अनुसूचित जनजाति व अनुसूचित जाति के लिए संविधान के अधीन वर्णित रक्षा उपायों से आधारित विषयों की खोज करें और उपायों को समय–समय पर राष्ट्रपति को प्रतिवेदन को संसद के प्रत्येक सदन में रखवा सकें।

1989 में पारित अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3 (1) में अनेक कार्य दण्डनीय अपराध की श्रेणी में घोषित किये वे निम्न प्रकार से हैं :–

1. अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की भूमि पर सदोष कब्जा करना।
2. अनुसूचित जाति या जनजाति के लोगों को निन्दनीय अखाद्य पदार्थ खाने या पीने के लिए दबाव डालना।
3. 3.अनुसूचित जाति या जनजाति के किसी सदस्य के अधिकृत आवंटित भूमि को हड़प लेना।
4. अनुसूचित जाति या जनजाति के किसी सदस्य के शरीर से बलपूर्वक कपड़े उतारना उसे निरादरित अपमानित करना
5. मतदान करने से अनुसूचित जाति व जनजाति के व्यक्ति से मना करना तथा व्यक्ति विशेष के पक्ष में मतदान करवाना
6. अनुसूचित जाति व जनजाति की किसी महिला की लज्जा भंग करना।
7. अनुसूचित जाति या जनजाति की किसी महिला का यौन शोषण करना।
8. अनुसूचित जाति या जनजाति के किसी सदस्य को अपना मकान, संपत्ति व गांव छोड़ने को विवश करना।

1989 के अधिनियम के अलावा दलित या अनुसूचित जाति व जनजाति के अधिकारों की रक्षार्थ सर्वांगीण विकास हेतु 1990 में संविधान के 65 वें संशोधन के तहत एक अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग का कार्यालय दिल्ली में है। इस आयोग में एक अध्यक्ष एक उपाध्यक्ष तथा पांच अन्य सदस्य होंते है। इन सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा 3 वर्ष के लिए की जाती है। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति व जनजाति आयोग एक परामर्शदात्री संस्था के रूप में कार्य करता है। यह आयोग अनुसूचित जाति व जनजाति से जुड़े सामाजिक कार्यों व मानव शास्त्र से संबंधित विशेषज्ञों की सेवा लेता है। यह आयोग अस्पृश्यता के फलस्वरुप जन्में भेदभाव का तथा उसे दूर करने के उपायों के अध्ययन करता है। संबंधित जातियों के सर्वांगीण विकास के विविध पहलुओं का अध्ययन करता है। पिछड़े समाजों को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ने का कार्य करता है। उन

सभी कारणों का अध्ययन किया जाता है। जिसके कारण अनुसूचित जनजाति व अनुसूचित जाति के व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध होते हैं। आयोग अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति की सुरक्षा , कल्याण , विकास तथा उत्थान संबंधी कार्यों का निर्वहन करता है और सुरक्षा उपायों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा किए जाने वाले उपायों की सिफारिशें करता है। यह आयोग संविधान तथा कानून द्वारा अनुसूचित जनजाति व अनुसूचित जाति को प्रदत्त सुरक्षा संबंधी विषयों की जांच करता है।

निष्कर्ष

अंत में कहां जा सकता है कि भारत में आदिवासी समुदाय जंगलों एवं पहाड़ों के निवासी रहे हैं। ये मुख्यतः समस्या मुक्त एवं आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत करते रहे हैं, परंतु औपनिवेशिक कालीन नीतियों और बाह्य समाज के संपर्क ने इनके लिए कई तरह की समस्याओं को जन्म दिया है जैसे –धर्मांतरण संबंधी समस्या, शिक्षा, ऋणग्रस्तता, स्वास्थ्य, भूमि हस्तांतरण की समस्या जो वर्तमान के औद्योगिक दौर में जटिल समस्या बनी हुई है।स्वतन्त्रता के पश्चात विकास प्रक्रिया का केंद्र बिंदु भारी उद्योग एवं कोर सेक्टर का विकास रहा है। इसके परिणामत रू विशाल इस्पात संयंत्र ,शक्ति परियोजनाएं एवं बड़े बांध अस्तित्व में आये, जिन्हें अधिकतर जनजातीय रिहाइशी वाले क्षेत्रों में स्थापित किया गया। इन क्षेत्रों में खनन संबंधी गतिविधियां भी तीव्र होती गयी। इन परियोजनाओं हेतु सरकार द्वारा जनजातीय क्षेत्रों की भूमिका का विशाल पैमाने पर अधिग्रहण किया गया, जिससे जनजातीय लोगों के विस्थापन की समस्या पैदा हुई। उनकी अपनी ही भूमि उनके हाथ से निकल जाने के कारण इनके सामने रोजगार की समस्या उत्पन्न हो गई परिणाम स्वरूप अपनी आजीविका के लिए यह सेठ साहूकारों व जमीदारों से ऋण लेने लगे जिससे ऋणग्रस्तता की समस्या बढ़ती गयी।

आर्थिक पिछड़ेपन एवं असुरक्षित आजीविका के साधनों के कारण जनजातियों को कई स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ा है। प्राकृतिक पर्यावरण के क्षय विशेषतरू वनों के विनाश व संसाधनों की घटती मात्रा के कारण जनजातीय महिलाओं की स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा। खनन व उद्योग हेतु जनजातीय क्षेत्रों का खुलना तथा उनका व्यवसायीकरण होना , जनजातियों के स्त्री– पुरुषों को अर्थव्यवस्था के हथकंडों का शिकार बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है। इससे उपभोक्ता वाद तथा महिलाओं को उपभोग की वस्तु समझने की अवधारणाओं को मजबूती मिली है। जनजातियों की परंपरागत संस्थाओं एवं कानूनों का आधुनिक संस्थाओं के साथ टकराव होने से जनजातियों में पहचान के संकट की आशंकाएं पैदा हुई हैं।

इन समस्याओं को मध्यनजर रखते हुए कहा जा सकता है कि आज भी भारतीय प्रजातांत्रिक राजनीति में आदिवासियों के मानवाधिकारों की सुरक्षा और प्रोत्साहन एक चुनौती का विषय है। आदिवासियों को राष्ट्रीय मुख्यधारा से जोड़ने के प्रयास के बावजूद इनकी बीच पनपते असंतोष ने कई आंदोलनों को जन्म दिया। नागालैंड, त्रिपुरा, मणिपुर में जनजातीय आंदोलनों को अलगाववाद से प्रेरित मानकर भौगोलिक दृष्टि से देखा गया। मूलतः सभी जनजातीय आंदोलनों का मुख्य कारण सामाजिक–सांस्कृतिक अलगाववाद, आर्थिक पिछड़ापन ,सरकारी नीतियां आंशिक तौर पर उस पिछड़ेपन को दूर कर पाई है। आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें राष्ट्रीय धारा से जोड़कर उचित दर्जा दिया जाए। आदिवासियों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए उनके सामाजिक ,सांस्कृतिक अस्तित्व को बनाए रखना है ,साथ ही उन्हें राष्ट्रीय मुख्यधारा से जोड़कर उनका विकास करना हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भारत का आदिवासी समाज – चतुर्वेदी लाल,पृ.129*
2. *डॉ मधुसूदन त्रिवेदी,सामाजिक नृ विज्ञान,राज.हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर,2003पृ.169*
3. *पी.आर.नायडू,भारत के आदिवासी ,राधा पब्लिकेशन ,1997,अध्याय 1 पेज नम्बर 8*
4. *डॉ.मधुसूदन त्रिवेदी,सामाजिक नृ–बिज्ञान ,राज.हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर 2003पृ.187।*
5. *डॉ.मधुसूदन त्रिवेदी ,सामाजिक नृ–विज्ञान,राज.हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर,2003,पृ 189*
6. *निर्मला पुतुल, अरावली उदघोष, 99वाँ अंक सं.गंगा सहाय मीना 22अगस्त2013पृ.93*
7. *भारतीय जनजाति समाज मुद्दे और चुनौतिया–डॉ.मन्जू मीना पृ.17*
8. *धर, प्रांजल –मानवाधिकार और वर्तमान भविष्य, कुरुक्षेत्र दिसम्बर 2006पृ.4*
9. *प्रदीप त्रिपाठी–मानवाधिकार और भारतीय संविधान राधा पब्लि.नई दिल्ली*
10. *डॉ श्रीराम वर्मा,भारतीय राजनीतिक विचारक,पृ.63*
11. *के.सी.श्रीवास्तव,प्राचीन भारत का साहित्य तथा संस्कृति पृ.236*
12. *आचार्य,नंदकिशोर–मानवाधिकार की संस्कृति पृ.14*
13. *डॉ .सत्यवीर सिंह–मानवाधिकार विविध आयाम,पृ.4*
14. *डॉ. सत्यवीर सिंह, मानवाधिकार विविध आयाम पृ.211*